देवल धर्मसूत्र में ऐश्वर्यों का विवरण

लल्लनजी गोपाल

सम्प्रति केवल आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम, वसिष्ठ, विष्णु और वैखानस के धर्मसूत्र ही मुद्रित और उपलब्ध हैं। किन्तु प्राचीनकाल में अन्य कई धर्मसूत्रों की रचना हुई थी, जो अपने पूर्णरूप में अब उपलब्ध नहीं हैं। कुमारिल ने तन्त्रवार्तिक[1] में शङ्खलिखित और हारीत के धर्मसूत्रों का उल्लेख किया है। वास्तव में धर्मसूत्रों अथवा उनके रचयिताओं की कोई प्रामाणिक सूची न होने के कारण हम कभी भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकेंगे कि काल के प्रवाह के साथ धर्मसूत्रों की विधा में कितनी हानि हुई है।

प्राचीन काल में देवल के नाम से एक धर्मसूत्र प्रचलित था, इसका हमारे पास निर्विवाद प्रमाण है।[2] प्रसिद्ध अद्वैतवेदान्तिन् शङ्कराचार्य ने देवल के धर्मसूत्र का स्पष्ट उल्लेख किया है।[3] इस उल्लेख से सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ शङ्कर के काल में उपलब्ध था। शङ्कर के अनुसार देवल ने अपने धर्मसूत्र में सांख्य के सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है, जिसमें प्रधान को ही संसार का कारण कहा गया है। सांख्य-मत के प्रतिपादकों में इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व होने के कारण ही शङ्कर ने उसके खण्डन के लिए विशेष प्रयास किया।

देवल धर्मसूत्र के अनेक उद्धरण मध्यकालीन भाष्यों और निबन्धों में उपलब्ध हैं। मूल देवल धर्मसूत्र के स्वरूप के विषय में हमारे विचार इन्हीं उद्धरणों पर आश्रित होंगे। भाष्यकारों और निबन्धकारों ने इस ग्रन्थ से किन अंशों को उद्धृत किया और किन को छोड़ दिया, इसके लिए उनके अपने कारण और तर्क रहे होंगे। प्राप्य उद्धरणों की सीमा के भीतर ही हम देवल धर्मसूत्र के विषयों और उनके सापेक्षिक महत्त्व की कल्पना कर सकते हैं।

इन उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि मूल ग्रन्थ लघु आकार का नहीं था। अन्य विषयों के अतिरिक्त इसमें सांख्य और योग का विस्तार के साथ विवरण था। यह इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता थी और इस दृष्टि से अन्य धर्मसूत्रों की तुलना में इसका महत्त्व था। इन दोनों दर्शनों के सिद्धान्त और व्यवहार पक्ष के अनेक विषयों पर देवल से लम्बे उद्धरण मध्यकालीन भाष्यों और निबन्धों में सुरक्षित हैं।

गाहड़वालवंश के नरेश गोविन्द चन्द्र (१११३-११५४ ई०) के मन्त्री लक्ष्मीधर ने अपने निबन्ध ग्रन्थ कृत्यकल्पतरु के मोक्षकाण्ड[4] में ऐश्वर्यों (दैवी शक्तियों) पर देवल से एक लम्बा उद्धरण दिया है। मोक्षकाण्ड के अध्याय २२ में योगविभूतियों का विवरण है। इस अध्याय में

१. तन्त्रवार्तिक (कुमारिल), पृ० १७९।

२. इस विषय पर हमारा लेख पं० बलदेव उपाध्याय अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित है।

३. वेदान्तसूत्र, १.४.२८ पर आचार्य शङ्कर की टीका।

४. कृत्यकल्पतरु (सं० के० वी० आर० ऐयंगर), पृ० २१६-१८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मीधर ने देवल के अतिरिक्त केवल याज्ञवल्क्य से ही उद्धरण दिया है। ये श्लोक संख्या में दो हैं और याज्ञवल्क्यस्मृति में प्राप्य हैं (याज्ञवल्क्य, ३।२०२-३)। इस प्रकार मोक्षकाण्ड का यह पूरा अध्याय एक प्रकार से देवल पर ही आधारित है। लक्ष्मीधर ने कृत्यकल्पतरु में देवल से अनेक अंश उद्धृत किये हैं, जिनमें से कुछ बहुत ही लम्बे हैं। ये उद्धरण किसी एक काण्ड तक सीमित नहीं हैं। ये सभी काण्डों में बिखरे हैं और धर्मसूत्र की विषय-वस्तु की परिधि में आने वाले अनेक विषयों से सम्बन्धित हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि लक्ष्मीधर को देवल का धर्मसूत्र अपनी सम्पूर्णता में उपलब्ध था।

मित्रमिश्र दूसरे निबन्धकार हैं, जिन्होंने ऐश्वर्यों पर देवल के इस अंश को उद्धृत किया है। मित्रमिश्र ने ओर्छा नरेश वीरसिंह (१६०५-१६२७ ई०) के प्रपौत्र का उल्लेख किया है, अतः उनकी सक्रिय रचनात्मकता का काल सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध रहा होगा।[1] प्रस्तुत उद्धरण उनके निबन्ध ग्रन्थ वीरमित्रोदय के अन्तिम खण्ड मोक्षप्रकाश में मिलता है। मोक्षप्रकाश अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। के० वी० आर० ऐयङ्गर ने इसकी एकमेव उपलब्ध हस्तलिखित प्रति का उपयोग कृत्यकल्पतरु के मोक्षकाण्ड का सम्पादन करते समय तुलना के लिए किया था।[2] उनका मत है कि मोक्षप्रकाश एक प्रकार से कृत्यकल्पतरु के मोक्षकाण्ड का परिवर्धन मात्र है और इस निबन्ध ग्रन्थ से अनेक लम्बे अंशों को अपने में समाविष्ट किये है।[3] अतः मोक्ष-प्रकाश के प्रमाण का कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है और उसकी कोई अधिक उपयोगिता नहीं है। मात्र वीरमित्रोदय में देवल के उद्धरणों के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि देवल धर्मसूत्र सत्रहवीं शताब्दी तक अपने पूर्ण रूप में वर्तमान था।

लक्ष्मीधर ने ऐश्वर्यों के विषय में देवल के मत को जो महत्त्व दिया है, उससे यह प्रतीत होता है कि वे देवल द्वारा प्रस्तुत विवरण को सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक प्रामाणिक मानते थे। सम्भवतः यह देवल धर्मसूत्र में एक पृथक् अध्याय था, किन्तु हमारे पास इसके शीर्षक का निर्धारण करने का कोई प्रमाण अथवा आधार नहीं है। लक्ष्मीधर ने मोक्षकाण्ड में इस अध्याय को योगविभूतयः (योग द्वारा प्राप्त अतिमानवीय शक्तियों) की संज्ञा दी है। योगविभूति का अर्थ है—ऐश्वर्य।[4] यह संभावना सर्वथा उपयुक्त है कि लक्ष्मीधर ने योगविभूतयः शीर्षक अध्याय की रचना मुख्यतः देवल से उद्धृत लम्बे अंश के रूप में करने के साथ ही देवल धर्मसूत्र के इस अध्याय के शीर्षक को भी अपने ग्रन्थ के लिए ग्रहण किया था।

इस उद्धरण में गद्य और पद्य दोनों मिश्रित हैं। प्रारम्भ में सूत्र हैं और अन्त में ९ श्लोक हैं।

अंश के आरम्भ में ८ ऐश्वर्य-गुणों के नाम दिये गये हैं। दूसरे सन्दर्भ में अन्य ग्रन्थों में देवल से जो उद्धरण प्राप्य हैं, उनसे देवल धर्मसूत्र में विषयों के प्रस्तुतीकरण की शैली की जो जानकारी मिलती है, उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उद्धरण में देवल धर्मसूत्र के

---

१. पी० वी० काणे, हिस्ट्री आव धर्मशास्त्राज़, खण्ड १, भाग २, पृ० ९४८।

२. कृत्यकल्पतरु भूमिका, पृ० ११।

३. वही, पृ० ८; पुनः देखिये पृ० ३४८।

४. अमरकोश, १.१.३६ विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय के आरम्भ के कुछ अंश सुरक्षित नहीं रह पाये हैं। इनमें सम्भवतः सर्वप्रथम ऐश्वर्यों की प्राप्ति को योगी के लिए अभीष्ट कहा गया था और तदन्तर योग के सन्दर्भ में ऐश्वर्यों की परिभाषा दी गई थी।

देवल ने ८ ऐश्वर्यगुण इस प्रकार गिनाये हैं—अणिमा (अणुशरीरत्वम्; अणु भाव से सूक्ष्म में भी आवेश की शक्ति), महिमा (शरीरमहत्त्वम्; महत्ता के कारण सभी शरीरों को आवृण करने की शक्ति), लघिमा (शरीराशुगामित्वम्; इससे अतिदूरस्थान को भी क्षण भर में पहुँच जाता है), प्राप्ति (विश्वविषयावाप्ति; इससे सर्वप्रत्यक्षदर्शी हो जाता है), प्राकाम्यम् (यथेष्टचरित्वम्; इसमें सभी भोगवरों को पाता है), ईशित्वम् (अप्रतिहतैश्वर्यम्; इससे देवनाओं से भी श्रेष्ठ होता है), वशित्वम् (आत्मवश्यता; इससे अपरिमित आयु और वक्ष्यजन्मा होता है) और यत्रकामावसायित्वम्।

इन आठों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है। अणिमा, महिमा और लघिमा को शारीर कहा गया है (क्योंकि इनका सम्बन्ध शरीर के आकार से है) और शेष पाँच को ऐन्द्रिक कहा गया है (क्योंकि इनका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों से है)। इसके अनन्तर इन आठ ऐश्वर्य गुणों की व्याख्या है। इस सम्बन्ध में देवल की विशिष्ट शैली है। प्रत्येक ऐश्वर्यगुण को प्रथम सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट व्याख्या है और तदनन्तर उससे प्राप्त अतिमानवीय शक्ति का वर्णन है। आठवें गुण यत्रकामावसायित्वम् के तीन प्रकारों का उल्लेख किया गया है—छायावेश, अवध्यानावेश और अङ्गप्रवेश। इनके स्वरूप की व्याख्या करके यत्रकामावसायित्वम् के द्वारा प्राप्य अतिमानवीय शक्ति का वर्णन किया गया है। अन्तिम सूत्र में कहा गया है कि इस प्रकार इन ऐश्वर्य गुणों को प्राप्त करके, कल्मषों को उद्धूत करके, संशयों को छिन्न करके, सभी वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखने वाला होकर, पर और अवर धर्म का जानने वाला होकर, कूटस्थ होकर और यह सब असत् और अनित्य है, ऐसा जानकर स्वयं ही शान्ति प्राप्त करता है। यह ऐश्वर्य की व्याप्ति है।

अतिमानवीय शक्तियों अथवा सिद्धियों की अवधारणा आपस्तम्ब धर्मसूत्र[१] में उल्लिखित है। पतञ्जलि ने योगसूत्र[२] में भूतजय से प्राप्त तीन प्रकार के फलों में एक प्रकार 'अणिमा आदि का प्रादुर्भाव' कहा है। व्यास ने इस सूत्र पर भाष्य में आठों सिद्धियों का नामोल्लेख किया है और उनके स्वरूप की व्याख्या की है। योग से सम्बन्धित सांख्य दर्शन में भी ऐश्वर्यों को स्थान मिला है।[३] आठ सिद्धियों अथवा ऐश्वर्यों की सूची अनेक ग्रन्थों में दी गई है।[४] प्रपञ्चसार[५] में यत्रकामावसायित्व को हटाकर उसके स्थान पर गरिमा को जोड़ दिया गया है। पूर्वकालीन किसी भी ग्रन्थ में ऐश्वर्यों अथवा सिद्धियों का विवरण देवल द्वारा प्रस्तुत विवरण से तुलनीय नहीं है। इनमें देवल के समान विस्तृत विवरण नहीं है। ये इस प्रकार प्रत्येक ऐश्वर्य अथवा सिद्धि की व्याख्या करके उनके महत्त्व का निरूपण नहीं करते।

---

१. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, २.९.२३.६-७।

२. योगसूत्र, ३.४५—ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च।

३. सांख्यकारिका, २३।

४. अमरकोश, १.१.३६; भागवत पुराण ११.५.४-५।

५. प्रपञ्चसार, १९.६२-६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रों के अनन्तर दिये गये ९ श्लोकों में योग की विधि के पालन से प्राप्य लाभ एवं गुणों का विवरण है। प्रथम पाँच श्लोकों में साहित्यिक शैली में दुर्बल और बली योगियों के बीच अन्तर को उभारा गया है। अग्नि की उपमा के माध्यम से यह कहा गया है कि एक दुर्बल योगी योग के भार से आक्रान्त होकर नष्ट हो जाता है, जबकि वह योगी, जिसकी शक्ति योग के द्वारा वर्धित है, सम्पूर्ण संसार का संशोधन कर सकता है। जिस प्रकार बलहीन व्यक्ति धारा के द्वारा बहा लिया जाता है, उसी प्रकार दुर्बल व्यक्ति विषयों के द्वारा अवश कर दिया जाता है, जबकि बली योगी विषयों पर नियन्त्रण पाता है। योग की शक्तियों से युक्त योगी प्रजापति, ऋषि, देव और महाभूतों में प्रवेश करता है। यम, अन्तक अथवा मृत्यु का उस पर कोई वश नहीं है। सहस्रों प्रकार के रूपों को धारण करके वह पृथ्वी पर विचरण करता है। कुछ के द्वारा वह विषयों को प्राप्त करता है और कुछ के द्वारा कठिन तप करता है। अन्त में वह उसको त्याग देता है।

ये ९ श्लोक महाभारत के पूना संस्करण में शान्तिपर्व के अध्याय २८९ के श्लोक १९ से २७ तक प्रायः पूर्णरूपेण समान हैं। निःसन्देह कुछ अत्यल्प महत्त्व के पाठ भेद मिलते हैं। ऐसा अपेक्षित भी है क्योंकि अनेक शताब्दियों की लम्बी अवधि में प्रतिलिपिकर्ताओं के द्वारा ऐसे अन्तर उपस्थित होने की स्वाभाविक सम्भावना है। महाभारत की हस्तलिखित प्रतियों के विश्लेषण से उसके अनेक पाठ-संस्करण ज्ञात होते हैं। इनमें महाभारत के विकास के विभिन्न चरणों में पाठ में किये गये परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। एक ही चरण, वर्ग और पाठ-संस्करण की विभिन्न प्रतिलिपियों में भी परस्पर अन्तर दिखलाई पड़ता है। अतः देवल में प्राप्य श्लोकों का पूना संस्करण के श्लोकों से पूर्ण साम्य किसी भी प्रकार अपेक्षित नहीं हो सकता। हमने आगे देवल धर्मसूत्र (= देवल०) और महाभारत (= महा०) के श्लोकों के पाठों की तुलना की है।

श्लोक १—"हि नु प्रभो" के स्थान पर महा० में "अबलः प्रभो" है (मोक्षप्रकाश में पाठ है "–गबल प्रभोः"। महा० में भी "प्रभो" के स्थान पर "प्रभोः" पाठान्तर मिलता है)।

श्लोक २—महा० में "यथा" के स्थान पर "यदा", "बहिर्" के स्थान पर "बह्नि", "पुमान्" के स्थान पर "पुनः" और "महीमिमाम्" के स्थान पर "महीमपि" पाठ है। इनमें से "यथा" और "महीमिमाम्" महा० में पाठान्तर के रूप में मिलते हैं। महा० के "पुनः" पाठ का समर्थन मोक्षप्रकाश से और कृत्यकल्पतरु के मोक्षकाण्ड की दो प्रतिलिपियों से होता है। अतः के० वी० आर० ऐयाङ्गर ने "पुमान्" पाठ को क्यों स्वीकार किया, यह समझने में हम असमर्थ हैं।

श्लोक ३—महा० में "न त्वजात–" के स्थान पर "तद्वंजात" मिलता है। महा० में अन्य परिवर्तन हैं "–तजो" के स्थान पर "–तजा" और "संशोधयेत्" के स्थान पर "संशोषयेत्"। इनमें से अन्तिम दो देवल० में उपलब्ध पाठ महा० में उल्लिखित पाठान्तरों में प्राप्य हैं।

श्लोक ४—"योगी" और "क्रियते" के स्थान पर महा० में क्रमशः "योगो" और "ह्रियते" पाठ मिलते हैं। इसमें से देवल० का केवल "योगी" पाठ ही पूना संस्करण के पाठान्तरों में उल्लिखित है।

श्लोक ५—"रावणः" के स्थान पर महा० में "वारणः" पाठ है, जो निश्चय ही अधिक उपयुक्त है। महा० की किसी प्रतिलिपि से देवल० का पाठ समर्थित नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक ६—महा० में "परशल्यार्थं" के स्थान पर "चवशाः पार्थं" पाठ आया है (मोक्ष-प्रकाश में "परभोगार्थं" पाठ है) और प्रथम पंक्ति के उत्तरार्धं में समस्त पद को तोड़कर "योगा योग-" पाठ दिया गया है। दोनों ही में देवल० द्वारा प्रस्तुत पाठ महा० की किसी प्रतिलिपि द्वारा स्वीकृत नहीं है।

श्लोक ७—यह महा० के श्लोक २५ से अभिन्न है।

श्लोक ८—महा० में "आत्मानं तु" और "योगं" के स्थान पर क्रमशः "आत्मनां च" और "योगः" पाठ उपलब्ध है। देवल० के ये दोनों ही पाठ पूना संस्करण में उल्लिखित पाठान्तरों में प्राप्य हैं।

श्लोक ९—महा० में प्राप्य परिवर्तन ये हैं—"कैश्चित् कैश्चिद्दुःखं" के स्थान पर "चैव पुनश्चोग्रं","पुनस्तानि" के स्थान पर "पुनः पार्थं" और "-गणा-" के स्थान पर "-गुणा-"। किन्तु इनमें से देवल० का केवल एक ही पाठ "पुनस्तानि" पूना संस्करण में उल्लिखित पाठान्तरों में मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि पूना के संस्करण में कुछ दूसरे पाठ स्वीकृत हैं, देवल० में आये पाठ का समर्थन कुछ प्रतिलिपियों में मिलता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि देवल धर्मसूत्र और महाभारत में से कौन मूल है और कौन ग्रहीता या प्रतिकर्ता है। यद्यपि सभी ९ श्लोक भावों की एकता की दृष्टि से निरन्तर हैं, वीरमित्रोदय के मोक्षप्रकाश में श्लोक ५ के बाद "तथा" शब्द मिलता है। इससे यह प्रतीत होता है कि मित्रमिश्र ने श्लोकों के दो वर्गों (श्लोक १-५ और श्लोक ६-९) को देवल धर्मसूत्र में दो पृथक् स्थलों से लिया था। महाभारत में ये सभी श्लोक परस्पर सम्बन्धित और निरन्तर क्रम में प्राप्य हैं। अतः यह सम्भावना उपस्थित होती है कि महाभारत के संस्कर्ता ने इन श्लोकों को देवल धर्मसूत्र से लिया था। किन्तु मोक्षप्रकाश में श्लोकों का जो वर्गीकरण है[1], उसका समर्थन कृत्य-कल्पतरु में मोक्षकाण्ड से नहीं होता। कृत्यकल्पतरु पूर्वकालीन है और मोक्षप्रकाश में बहुत सी सामग्री उसी से ली गई है। अतः मोक्षप्रकाश में श्लोक ५ के बाद "तथा" शब्द को अनावश्यक मानना होगा और सभी ९ श्लोकों को एक क्रम में जुड़ा स्वीकार करना होगा। इस प्रकार महा-भारत को ग्रहीता अथवा अनुकर्ता मानने का तर्क शिथिल हो जाता है।

दोनों ग्रन्थों में किसने किससे लिया है, इसका निर्णय करना कठिन नहीं है। इन श्लोकों में हम सम्बोधन कारक का रूप "राजन्"(देवल० १, २ और ४),"प्रभो"(देवल० १) और "भरतर्षभ" (देवल० ८) में देखते हैं। देवल धर्मसूत्र के सम्भावित रूप में किसी ऐसे सन्दर्भ अथवा स्थल की सम्भावना नहीं है, जिसमें शब्दों के इन रूपों के उपयोग का कोई औचित्य हो। स्पष्ट है कि ये श्लोक भरत वंश के किसी राजा या राजकुमार को सम्बोधित करके कहे गये कथन हैं। इससे

१. मित्रमिश्र ने इन श्लोकों को "तथा" के द्वारा दो वर्गों में जो विभक्त किया, उसके पीछे कदाचित् यह तर्क था कि यद्यपि इन श्लोकों में योगी की शक्तियों का ही गुणगान है, हमें यहाँ दो स्पष्ट बातें मिलती हैं—एक में दुर्बल योगी की तुलना में उसकी शक्तियों का निरूपण और दूसरे में उसकी कुछ अतिमानवीय शक्तियों का उल्लेख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतीत होता है कि इन श्लोकों का उचित और मूल स्थान महाभारत में ही है, जहाँ वे भीष्म के द्वारा युधिष्ठिर को दी गई शिक्षा के अन्तर्गत प्राप्य हैं। महाभारत में इन श्लोकों से पूर्व का श्लोक और साथ ही उनके अनुवर्ती श्लोक परस्पर सम्बन्धित हैं और एक तार्किक क्रम में उपस्थित हुए हैं। इस प्रकार देवल का प्रथम श्लोक (महा० १२.२८९.१९) महाभारत के १२.२८९.१८ से सीधे उत्पन्न प्रतीत होता है और इसी प्रकार महाभारत के १२.२८९.२८ और २९ देवल के नौ श्लोकों की स्वाभाविक परिणति हैं। पुनः इन नौ में से दो श्लोकों[1] का जो पाठ महाभारत में उपलब्ध है, उसमें "पार्थ"[2] का नाम सम्बोधन कारक में आता है। देवल में उनके समानान्तर श्लोकों में "पार्थ" के नाम का उच्चारण नहीं हुआ है। देवल के श्लोक ६ में 'चावशः पार्थ" के स्थान पर "परशल्यार्थ"[3] पाठ है और इसी प्रकार श्लोक ९ में "पुनः पार्थ" के स्थान पर "पुनस्तानि" पाठ मिलता है। यह परिवर्तन देवल धर्मसूत्र के लेखक ने कदाचित् जानबूझकर किया था। किन्तु यह महाभारत से इन श्लोकों के हरण को छुपाने का बहुत ही भोंडा प्रयास है। लेखक ने कुछ अन्य शब्दों ("राजन्", "प्रभो" और "भरतर्षभ") को यथास्थान रहने दिया है, जब कि वे देवल के सन्दर्भ के सर्वथा अनुपयुक्त हैं और इस प्रकार अधमर्ण की पहचान खुले स्वर से कर रहे हैं।

शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र[4] पर अपने भाष्य में दो श्लोकों को उद्धृत किया है, जो देवल के श्लोक ८ और ९ (= महा० १२।२८९।२६-२७) ही हैं, किन्तु शङ्कर ने यह नहीं कहा है कि ये श्लोक देवल धर्मसूत्र से उद्धृत किये जा रहे हैं।[5] जैसा हमने ऊपर कहा है शङ्कर को देवल धर्मसूत्र का परिचय भलीभाँति प्राप्त था। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शङ्कर ने इन दोनों श्लोकों का सम्बन्ध उनके मूल स्रोत महाभारत से जोड़ना चाहा, न कि देवल धर्मसूत्र से।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवल में ये नौ श्लोक महाभारत से लिये गये थे। इसकी स्वाभाविक निष्पत्ति यह होगी कि देवल धर्मसूत्र की रचना को महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय २८९ (पूना संस्करण) की रचना के काल के उत्तर में रखा जाय।

---

१. महाभारत, १२.२८९.२४,२७।

२. "पार्थ" प्रायः अर्जुन के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु यह मातृवाचक है और युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के लिए समान रूप से सार्थक है। यह "पृथा" से बना है, जो कुन्ती का मूल नाम था। कुन्ती यादवनरेश शुर की पुत्री थी, किन्तु उसका पालन उसके सन्तानहीन पितृव्य कुन्ति अथवा कुन्तिभोज ने किया था। पाण्डु के साथ विवाह के पूर्व वह कर्ण की माता बनी और विवाह के बाद उसने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को जन्म दिया। "पार्थ" का उपयोग पार्थिव अथवा राजकुमार के अर्थ में भी होता है। यहाँ "पार्थ" युधिष्ठिर का बोधक है।

३. जैसा हमने पहले देखा है, इस पाठ का भी समर्थन महाभारत की कुछ प्रतिलिपियों से मिलता है।

४. ब्रह्मसूत्र, १.३.२७।

५. शङ्कर ने इन श्लोकों का उल्लेख "ततः स्मृतिरपि" शब्दों के द्वारा किया है। स्मरणीय है कि अन्यत्र समानान्तर सन्दर्भों में शङ्कर ने "स्मृति" शब्द का उपयोग स्मृतिग्रन्थ के अर्थ में नहीं किया है। यहाँ स्मृति को श्रुति के विरोध में रखा गया है और यह महाभारत, गीता और पुराणों का द्योतक है। यहाँ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि शङ्कर ने सम्बोधन कारक में "भरतर्षभ" शब्द को हटाया नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवल में इन श्लोकों की उपस्थिति की एक दूसरी व्याख्या सम्भव है। हमने देखा है कि देवल के इन श्लोकों का एकमेव सीधा प्रमाण कृत्यकल्पतरु का मोक्षकाण्ड है, वीरमित्रोदय के मोक्ष-प्रकाश ने तो केवल उन्हें कृत्यकल्पतरु से ले लिया है। यह सम्भव है कि लक्ष्मीधर ने केवल सूत्रों को ही देवल का बतलाया था और श्लोकों को महाभारत से उद्धृत किया था, किन्तु कालान्तर में किसी प्रतिलिपिकर्ता ने प्रमादवश महाभारत के नाम के उल्लेख को छोड़ दिया हो और इस प्रकार देवल के सूत्रों और महाभारत के श्लोकों को परस्पर संपृक्त कर दिया हो, जिससे यह प्रतीत हुआ कि ये श्लोक भी देवल धर्मसूत्र के ही अंश थे। हमने अन्यत्र यह दिखलाया है कि एक दूसरे स्थल पर भी कृत्यकल्पतरु के मोक्षकाण्ड में इसी प्रकार की त्रुटि का एक दूसरा उदाहरण है। यहाँ महाभारत के एक उद्धरण को ब्रह्मपुराण का बतलाया गया है।[1]

एक अन्य सम्भावना यह भी है कि यद्यपि ये ९ श्लोक देवल धर्मसूत्र में मूलतः नहीं थे किन्तु जब कालान्तर में इसमें परिवर्तन और परिवर्धन हुए, तो इन श्लोकों को जोड़ दिया गया। यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि पार्थ का नाम जानबूझकर श्लोक ६ (और सम्भवतः श्लोक ९) से हटा दिया गया था, तो इन नौ श्लोकों को प्रक्षिप्त मानना होगा, क्योंकि उनको जोड़ने वाले ने अपने कार्य को छुपाने का प्रयास किया था। इस स्थिति में शान्तिपर्व के २८९वें अध्याय का रचना-काल वह सीमा होगी, जिससे पूर्व देवल धर्मसूत्र का संशोधन और उसमें इन श्लोकों का प्रवेश हो गया था। यदि देवल के साथ इन श्लोकों के सम्बन्ध के विषय में शङ्कराचार्य के मौन का कोई महत्त्व है, तो इन प्रक्षेपकों के प्रवेश की तिथि बहुत उत्तर काल में होगी—शङ्कराचार्य के बाद, किन्तु निश्चय ही लक्ष्मीधर से पूर्व।

अतः कृत्यकल्पतरु में प्राप्य देवल धर्मसूत्र के उद्धरण में ऐश्वर्यों पर नौ श्लोकों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यद्यपि मूल देवल धर्मसूत्र अत्यन्त प्राचीन है, इसमें उत्तरकाल में दूसरे स्रोतों से सामग्री जोड़कर इसका परिवर्धन किया गया और यह कार्य महाभारत के शान्ति-पर्व के अपने वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने और महाभारत में योग विषयक अध्यायों के प्रवेश के बाद ही हुआ था।

— ९, गुरुधाम कालोनी, दुर्गाकुण्ड रोड
वाराणसी (उ० प्र०)

१. "कृत्यकल्पतरु में अरिष्टों पर ब्रह्मपुराण से उद्धरण" पर हमारा लेख कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग की पत्रिका में प्रकाशित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org